इमली महुआ

प्रकाशक:

कल्पवृक्ष

5, श्री दत्त कृपा, 908, डेक्कन जिमखाना, पुणे 411004
www.kalpavriksh.org

साइटेशन: कोएल्हो एन. और पद्मनाभन एस. (2016). *इमली महुआ*, पुणे, महाराष्ट्र: कल्पवृक्ष

मूल स्त्रोत: Coelho, N. & Padmanabhan S. (2016). *Imlee Mahuaa: Learning in Freedom the Democratic Way*. Pune, Maharashtra: Kalpavriksh.

लेखक: नायला कोएल्हो, सुजाता पद्मनाभन ,

हिंदी अनुवाद: अरविन्द गुप्ता

प्रकाशन तारीख: मार्च 2016

आर्थिक सहयोग: ऑक्सफेम-इंडिया

कॉपीराइट मुक्त: यह प्रकाशन कॉपीराइट मुक्त है. आप इस प्रकाशन को बिना बदले उसकी प्रतियाँ बना सकते हैं और उसका अनुवाद करके लोगों में बाँट सकते हैं. आपसे विनती है कि हमेशा मूल स्रोत का उल्लेख करें और उसके रीप्रिंट या अनुवाद की एक प्रति हमें अवश्य भेजें.

यह केस-स्टडी "विकल्प संगम: डॉक्यूमेंटेशन एंड कांफ्लुएंस ऑफ़ आल्टरनेटिव्स इन इंडिया" प्रकल्प के अंतर्गत की गयी है और ऑक्सफेम, इंडिया ने उसे आर्थिक सहयोग दिया है. इस प्रक्रिया के अंतर्गत भारत में एक वैकल्पिक ढांचा खोजने का प्रयास है जिससे पर्यावरण संतुलन, सामाजिक भलाई, न्याय, प्रत्यक्ष लोकतंत्र और आर्थिक लोकतंत्र कायम रह सके. अधिक जानकारी के लिए www.vikalpsangam.org देखें. इस विषय पर चर्चा के लिए anurivelihoods@gmail.com पर संपर्क करें. इमली महुआ स्कूल के बारे में अधिक जानकारी के लिए www.imleemahua.org देखें.

फोटो साभार: सुजाता पद्मनाभन , नायला कोएल्हो

डिजाईन और लेआउट: तान्या मजमुदार

साभार: लेखक इमली महुआ समुदाय, स्कूल में बच्चों और वयस्कों, SAATHI के सदस्यों जिन्होंने ख़ुशी-ख़ुशी अपना बहुमूल्य समय दिया, के आभारी हैं. बलेंगापारा गाँव के लोगों ने सहर्ष इन दो अजनबियों के रहने की व्यवस्था की. लेखक उनके भी आभारी हैं. प्रयाग जोशी, बी. रामदास और शीबा दीसोर का इस लेख को सुधारने के लिए धन्यवाद.

इमली महुआ स्कूल बलेंगापारा के आसपास आदिवासियों के बच्चों के लिए स्कूल है. बलेंगापारा, छत्तीसगढ़ राज्य के बस्तर इलाके में एक छोटा सा गाँव है. आधुनिकता पर सवार वर्तमान भारत में आजकल तमाम भारत परम्पराओं, जीवन शैलियों और सीखने के तरीकों को बहुत जल्दबाजी में एकरूप बनाया जा रहा है. इन हालातों में इमली महुआ स्कूल वाकई में एक नायाब प्रयोग है.

पिछली कई शताब्दियों से इस विशाल महाद्वीप के आदिवासी समुदाय पर एक प्रमुख और प्रभावी नजरिया हावी रहा है. आदिवासी जीवनशैली के कुछ अवशेष जो प्रकृति और जंगलों के बहुत करीब हैं काफी अर्से से खतरे में है. वर्तमान विकास धाराएँ, नई तकनीकें और सत्ता के नए केंद्र पुरानी आदिवासी जीवनशैली को ठुकरा देने पर उन्हें मजबूर कर रहे हैं.

यह छोटी शैक्षिक पहल विचारों के राडार पर एक चमकीला बिंदु है. इससे उम्मीद जगती है कि आदिवासी समुदायों और उनके बच्चों को एक नए तरीके से शिक्षा दी जा सकती हैं.

पृष्ठभूमि

भारत में शिक्षा की बागडोर राज्य सरकारों के अंतर्गत है. केंद्र सरकार केवल शिक्षा की नीतियां बनाती है और दिशा-निर्देश देती है. आज़ादी के उपरांत भारत सरकार का उच्च शिक्षा पर अधिक जोर रहा है. इससे स्कूली शिक्षा की बुनियाद कमज़ोर रह गयी और वही स्थिति आज भी बरक़रार है. यह स्थिति आज देश के हरेक गाँव में प्राथमिक स्कूल मौजूद होने के बावजूद है. छत्तीसगढ़ एक आदिवासी बाहुल्य नया राज्य है. इसलिए वहां नागरिकों के हितों की सुरक्षा को लेकर अनेकों चुनौतियाँ हैं.

आदिवासी बच्चों के लिए सामान्य स्कूली शिक्षा में एकीकृत होना एक बहुत दर्दनाक अनुभव रहा है. “सबके लिए एक जैसी शिक्षा” वाला मॉडल अपार विविधता वाले देश के लिए उपयुक्त नहीं है. इस विशाल देश में बेहद भौगोलिक, प्राकृतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता है. खेती के आरम्भ से भी पुरानी आदिवासी सभ्यता पर इन धारणाओं को लादना सरासर गलत है.

वर्तमान मुख्यधारा के चश्मे से हम आदिवासियों के जीवन, विवेक और उनके दृष्टिकोण को नहीं समझ पाएंगे. सत्ताधारी राज्य और बड़ी कम्पनियों की प्रभावशाली विचारधारा के कारण आदिवासी समुदाय मुख्यधारा से कट गया है और खुद को ठुकराया हुआ और अपमानित महसूस करता है. पिछले कुछ सालों में राज्य सरकार ने सलवा जुडुम के ज़रिये आदिवासियों पर शारीरिक और मानसिक अत्याचार भी किये हैं. नियमित गति से आदिवासियों का अपने परिवेश और प्राकृतिक संसाधनों पर नियंत्रण कम हुआ है. इससे स्थिति और बिगड़ी है. राज्य सरकार द्वारा विकास के निर्धारित लक्ष्य, बड़ी कंपनियों का हित संरक्षण, और आदिवासियों के दुःख-दर्द की अवहेलना इसके कुछ प्रमुख कारण हैं.

आदिवासी समाज के बच्चों की स्कूली शिक्षा भी जटिल समस्यायों में फँसी है. शिक्षा विभाग ने कभी भी आदिवासी समुदाय के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास नहीं किया है. आदिवासी बच्चों को कैसी शिक्षा दी जाये जिससे एक ओर

उनकी विशिष्ट सभ्यता बरकरार रहे और दूसरी ओर उनमें नयी समस्यायों और चुनौतियों से निबटने की कुशलता पैदा हो? शिक्षा विभाग ने इसके बारे में गंभीर और गहरा प्रयास कभी नहीं किया. आदिवासियों का शिक्षण किस भाषा में हो, यह भी एक बड़ा मुद्दा है. वर्तमान पाठ्य पुस्तकों में आदिवासियों के जीवन की बहुत कम झलक है. एक सर्वेक्षण के अनुसार आदिवासी स्कूलों में बुनियादी सुविधायों और शैक्षिक सामग्री की भी बहुत कमी है (वीरभद्रनायिका आदि, 2012).

क्यूंकि आदिवासी बच्चे भारतीय गणतंत्र का अभिन्न भाग हैं इसलिए उन्हें भी किसी अन्य भारतीय नागरिक जैसे ही शिक्षा का पूरा हक़ है. इसलिए यह ज़रूरी है कि भारतीय मुख्यधारा में समता के साथ उनका विलय उनकी इच्छा और सहमति के बाद ही हो. आदिवासियों में वो क्षमता पैदा की जाये कि वे अपनी मर्ज़ी से और अपनी शर्तों पर बदलाव की दिशा निर्धारित कर सकें.

शिक्षा क्या है और वह कैसी हो? यह खुद में अहम् सवाल है. उन्नीसवीं शताब्दी से ब्रिटिश शासन ने ऐसी शिक्षा की नींव रखी जो भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद को अच्छे ढंग से नियंत्रित कर सके. इसलिए जिस भारत में सीखने-सिखाने और तालीम देने के तरीकों में अपार विविधता थी, वहां अंग्रेजों ने सभी बच्चों की ट्रेनिंग और शिक्षा को एक-सामान बनाने की कोशिश की. भाग्यवश इसका पुरजोर विरोध हुआ और उन्हें सीमित सफलता ही मिली. शुरू से ही टैगोर और गाँधी ने देश के बच्चों को ऐसी शिक्षा देने के प्रयास किये जो लोगों की ज़रूरतों के अनुकूल थे. उपयुक्त शिक्षा के लिए कई साहसिक और क्रांतिकारी प्रयोग किये गये. इस समझ की झलक हमें 2005 के नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क में दिखती है. पर ज़मीनी हकीकत उससे बिलकुल अलग है.

देश के आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में बहुत सी संस्थायों और व्यक्तियों ने, आदिवासी बच्चों को उनकी ज़रूरतों के अनुकूल समुचित शिक्षा देने का प्रयास किया है. इमली महुआ विद्यालय आदिवासी बच्चों के लिए इसी तरह का एक स्कूल है. इस शोधपत्र में इमली महुआ स्कूल को समझने की कोशिश की गयी है.

इस शोध के लिए अक्टूबर 2015 में हमने स्कूल में एक हफ्ता बिताया. यह शोधपत्र, इमली महुआ स्कूल के बच्चों, व्यस्कों, अभिभावकों और एक स्थानीय गैर-सरकारी संस्था के साक्षात्कारों पर और एक सप्ताह के हमारे निरीक्षणों पर आधारित है.

हमें उम्मीद है कि इस शोध से बच्चों, शिक्षा और आदिवासी समुदायों में रूचि रखने वाले सभी लोगों को लाभ होगा. विशेषकर उनको फायदा होगा जिनकी आदिवासी बच्चों की शिक्षा में रूचि है. या वो लोग जो खुद स्कूल चलाना चाहते हैं. जहाँ यह स्कूल स्थित है वहां के समुदाय को इससे विशेष लाभ होगा.

संक्षिप्त में स्कूल की स्थिति

इमली महुआ स्कूल (संक्षिप्त में इमली महुआ) छत्तीसगढ़ राज्य के आदिवासी इलाके बस्तर के कोंडागांव जिले के बलेंगापारा गाँव में स्थित है. यहाँ तीन से पंद्रह वर्ष की उम्र के साठ बच्चे, रोजाना कई अलग-अलग गतिविधियाँ करने के लिए एकत्रित होते हैं. पढाई भी उसका एक हिस्सा है. बलेंगापारा एक छोटा गाँव है जिसमें एक ही मुड़िया-गोंड जनजाति के कोई 55 परिवार रहते हैं. गाँव की कुल आबादी 350 है. इस गाँव के 12 बच्चे इमली महुआ में पढ़ते हैं. बाकी बच्चे पास के तीन गाँवों से आते हैं - कोकोडी (27), कोडागाँव (8) और जगाधिन पारा (13). यह गाँव स्कूल से 3-4 किलोमीटर की दूरी पर हैं.

स्कूल में आने वाले तीन-चौथाई बच्चे मुड़िया-गोंड जनजाति के हैं. बाकी बच्चे अनुसूचित जातियों या अन्य पिछड़ी (कलार, गान्दास और पंकास) जातियों के हैं. इमली महुआ में आने वाले 90 प्रतिशत बच्चे, पहली पीढ़ी के छात्र हैं. दो बच्चों को छोड़कर बाकी सभी बच्चे, गरीबी रेखा के नीचे वाले आर्थिक वर्ग के हैं. चार परिवार पूरी तरह भूमिहीन हैं. कई परिवारों में केवल एक ही पालक नौकरी पर है.

इमली महुआ अगस्त 2007 में स्थापित हुआ. उसे चेन्नई स्थित आकांक्षा चैरिटेबल ट्रस्ट संचालित करती है. इमली महुआ, नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ ओपन सकूलिंग (NIOS) का एक पंजीकृत केंद्र है. स्कूल छत्तीसगढ़ सरकार के शिक्षा विभाग के अंतर्गत भी पंजीकृत है. स्कूल को सरकार से कोई आर्थिक अनुदान नहीं मिलता है.

शुरुआत में

आकांक्षा पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट (APCT) ने ग्रामीण इलाकों में स्कूल खोलने का निर्णय लिया. खोज के दौरान वे महाराष्ट्र के गड्चिरौली जिले और छत्तीसगढ़ के बस्तर इलाके में गए. वर्धा जिले में पवनार स्थित, परमधाम मुद्रणालय आश्रम के मित्रों की सहायता से आकांक्षा के ट्रस्टी, SAATHI (साथी समाज सेवा संस्थान) के सदस्यों से मिले. उनकी बैठक कोंडागाँव जिले के कुमारपारा गाँव में हुई. SAATHI संस्थान बहुत सालों से उस इलाके में स्थानीय -हस्तकला, सेहत, शिक्षा और जंगल अधिकारों के मुद्दों द्वारा लोगों को रोज़गार दिलाने पर काम कर रही थी.

SAATHI के संस्थापक - भूपेश तिवारी और हरी भारद्वाज ने स्थान चुनने और स्थानीय समुदाय से तालमेल बनाने में APCT की मदद की. उन्होंने इस प्रकल्प की सफलता में कोई कोशिश बाकी नहीं छोड़ी.

स्कूल किस स्थान पर हो, इसके लिए APCT द्वारा सुझाये मानदंडों पर अमल किया गया. मानदंडों के अनुसार इलाका ऐसा हो जहाँ सरकारी बुनियादी ढांचों - सड़कों, अस्पतालों, बिजली और बस सुविधायों का अभाव हो. भूपेश और हरी ने मानदंडों की इस सूची में दो बातें और जोड़ीं. उनके सुझाव ऐसा गाँव चुनने पर था जहाँ केवल एक ही जनजाति हो (सांस्कृतिक और भाषा की एकरूपता के लिए). उनके अनुसार चुना हुआ गाँव SAATHI के ऑफिस से केवल 10-15 किलोमीटर की दूरी पर हो, जिससे ज़रुरत के समय उनकी तुरंत सहायता की जा सके. जिन 100 गांवों में SAATHI संस्थान काम करती थी उनमें से मानदंडों पर खरे उतरने वाले 10 गांवों का दौरा किया गया. APCT ने

जिस गाँव का पहले दौरा किया वो बलेंगापारा था. भाग्यवश, पहला गाँव बलेंगापारा ही चुन लिया गया.

पहली ही मीटिंग में (जिसका स्वागत ढोल बजा कर हुआ) APCT के एक ट्रस्टी प्रयाग जोशी ने स्कूल का संक्षिप्त वर्णन पेश किया. बलेंगापारा के सभी निवासियों ने सर्वसम्मति से APCT को अपने गाँव में स्कूल स्थापित करने की अनुमति दी. स्कूल की इमारत के निर्माण तक उन्होंने गाँव में स्थित, घोटुल[1] की बिल्डिंग के इस्तेमाल का सुझाव दिया. गांववालों ने प्रयाग से केवल एक प्रश्न पूछा “क्या स्कूल में बच्चों को अंग्रेजी पढाई जाएगी?” उत्तर में प्रयाग ने एक नपातुला जवाब दिया, “हाँ, अंग्रेजी भी एक विषय होगा.”

1. घोटुल आदिवासी युवा-युवतियों के सीख की एक परंपरागत संस्था है.

आरम्भ के दिन

2007 में स्कूल दो छात्रों से शुरू हुआ. इसमें एक लड़का हीरालाल था जिसने स्कूल छोड़ दिया था, और दूसरी लड़की अनामिका थी. अनामिका, पोस्टमैन की भतीजी थी और वो पड़ोस के गाँव कोकोडी की थी. स्कूल में तीन शिक्षक थे.

उसके बाद हर साल स्कूल में बच्चों की संख्या बढ़ती गयी. बलेंगापारा के साथ-साथ पास के गांवों कोकोडी, कोडागांव और जगाधिन पारा के बच्चों ने भी स्कूल में दाखिला लिया. ट्रस्ट ने स्कूल में अधिक से अधिक 60 बच्चों के दाखिले की अनुमति दी. ट्रस्ट को लगा कि उससे अधिक बच्चों से स्कूल की गुणवत्ता कम होगी. नेशनल कौंसिल फॉर टीचर एजुकेशन (2010) और द राइट्स ऑफ़ चिल्ड्रेन टू फ्री एंड कंपल्सरी एजुकेशन एक्ट (2009) के अनुसार 60 बच्चों के लिए दो BEd की डिग्री वाले शिक्षकों को स्कूल में रखना अनिवार्य है. ट्रस्ट ने इस बात को माना. स्कूल में अब तभी कोई नया दाखिला होता है जब कोई बच्चा स्कूल छोड़कर जाता है.

किसी भी शैक्षिक या राजनैतिक विचारधारा से मुक्ति

प्रयाग मानते हैं कि शुरू में स्कूल गांधीजी की नई तालीम शिक्षा, मारिया मोंटेसरी और जे. कृष्णमूर्ती की शिक्षा पद्दतियों से प्रभावित था.

जब स्कूल शुरू हुआ तो उसका नाम था इमली महुआ *नई तालीम सेन्टर फॉर लर्निंग* [2]. स्कूल के नाम के अनुकूल, शिक्षा पद्दति को लागू करने के सभी प्रयास किये गये. नई तालीम पद्दति में बच्चों को अपने हाथों से बहुत काम करना होता था. बच्चों ने पढाई में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के साथ सम्बन्ध जोड़ना सीखा. जल्द ही इस तरीके की दो खामियां समझ में आयीं. पहले तो व्यस्क भी इन संबंधों को नहीं समझ पाए, और बच्चे इन संबंधों के बारे में सीखते-सीखते ऊब गए. वैसे बच्चों को अपने हाथों से काम करने में बड़ा मज़ा आया.

फिर बच्चे नाखुश रहने लगे. परन्तु आदिवासी होने के नाते उन्होंने अपनी यह नाखुशी ज़ाहिर नहीं की. तब इमली महुआ के व्यस्कों ने इस बारे में सोच-विचार किया. बच्चों को खुश करने के लिए उन्हें स्कूल में क्या बदलना होगा? बच्चों की ख़ुशी उन्हें सबसे महत्वपूर्ण बात लगी. उन्हें यह भी पता चला कि बच्चे सबसे खुश तब थे जब उनके ऊपर कोई नियंत्रण नहीं था. आदिवासी बच्चों को घरों में बहुत स्वतंत्रता मिलती है. इसलिए स्कूल में भी उन्हें आज़ादी मिलनी ही चाहिए. उसके बाद स्कूल में नई बदल आयी. फिर स्कूल का संचालन व्यस्कों की बजाये बच्चों के हाथों में चला गया.

स्कूल की यात्रा के दौरान उसमें हर कदम पर बदलाव आये. स्कूल में बदलाव इसलिए किये गए जिससे बच्चे अधिक-से-अधिक खुश रह सकें. स्कूल के संचालन में दो बातें अहम् थीं - स्कूल की वर्तमान स्थिति और बच्चों को एक खुशहाल बचपना प्रदान करना. आज इमली महुआ खुशियों, उमंगों, जीवन और ऊर्जा से भरा-पुरा एक स्कूल है.

वर्तमान में स्कूल

इमली महुआ स्कूल समुदाय में अब 63 सदस्य हैं. उनमें 60 बच्चे, बाकी 3 व्यस्क[3] हैं जिनमें प्रयाग शामिल हैं. मिलन बघेल एक प्रशिक्षित कुम्भार हैं जो मिट्टी के काम में दक्ष हैं. वो 2009 में स्कूल में शामिल हुए. गौतम सेठिया अर्थशास्त्र में पोस्ट-ग्रेजुएट हैं. वो सात सालों से स्कूल में पढ़ा रहे हैं और वर्तमान में BEd की तैयारी में लगे हैं.

स्कूल में तीन से लेकर पंद्रह साल की उम्र के बच्चे हैं. बच्चे चार समूहों में बंटे हैं - सपरी, सेमर, सीताफल और सूरजमुखी.

---

2. स्कूल का नाम इतना लम्बा था की कोई बच्चा उसे अच्छी तरह बोल नहीं पाता था. उसके बाद स्कूल का नाम बदल कर इमली महुआ विद्यालय (हिंदी में) और इमली महुआ स्कूल (अंग्रेजी में) रखा गया. इस नाम के बदलने में बच्चे शामिल थे.

3. टीचर और प्रिंसिपल शब्द तभी इस्तेमाल होता है जब किसी बाहरी काम के लिए किसी फॉर्म पर हस्ताक्षर करने की ज़रुरत पड़ती है. वैसे स्कूल बच्चों और बड़ों का एक समुदाय है.

सूरजमुखी के कुछ बच्चों ने स्कूल के कामकाज के साथ-साथ व्यावसायिक और उद्यमी सीख भी हासिल कर रहे हैं. इसमें मिट्टी के बर्तन, पुस्तकालय और किताबों की दुकान और स्कूल में पढ़ाने की शिक्षा जैसी बातें शामिल है.

वर्तमान में इमली महुआ स्कूल में बच्चों की संख्या और उनकी आयु		
समूह का नाम	**बच्चों की संख्या**	**आयु सीमा**
सपरी	14 (6 लड़कियां, 8 लड़के)	3 से 5 वर्ष
सेमर	13 (8 लड़कियां, 5 लड़के)	7 से 12 वर्ष
सीताफल	15 (8 लड़कियां, 7 लड़के)	8 से 10 वर्ष
सूरजमुखी	18 (13 लड़कियां, 5 लड़के)	11 से 15 वर्ष

साप्ताहिक दिनचर्या

स्कूल साल[4] में बारहों महीने सोमवार से शनिवार, सुबह 7.30 से शाम 4.30 तक लगता है. लोगों की निर्धारित ड्यूटी और लचीले टाईमटेबल के कारण, स्कूल में सप्ताह के हर दिन कुछ अलग होता है. परिस्थितियों के अनुसार उसमें ज़रूर बदलाव किये जाते हैं. पर कुछ बातें जैसे - हाजिरी, सफाई, पानी, बागवानी और भोजन का समय पक्की तौर पर निर्धारित होती हैं.

शैक्षिक कुशलताओं के सीखने में अंग्रेजी, हिंदी, गणित, विज्ञान, पर्यावरण शिक्षण / सामाजिक बदलाव, योग, संगीत, गाना-बजाना, कहानी सुनाना, पढ़ना, चर्चा, मिट्टी का काम, रंगाई और चित्रकला, स्कूल के अन्दर और बाहर के खेल, कढ़ाई और कताई जैसे विषय भी शामिल हैं. सप्ताह में तीन बार पूरे स्कूल का एक साथ, लाइब्रेरी क्लास होता है. इसमें पास के सरकारी स्कूल के बच्चे भी आ सकते हैं.

ऊपर से घड़ी की दिशा में: योग, कहानी, कला

4. स्कूल ने यह निर्णय 2016 के शुरू में लिया. 2015 तक स्कूल साल में 11 महीने चलता था और एक महीने की छुट्टी रहती थी. एक छोटे समूह ने नेशनल ओपन स्कूल सेकेंडरी स्तर की परीक्षा में बैठने का निर्णय लिया. इसलिए वे स्कूल सुबह 7.30 बजे आते हैं.

चर्चा सत्र - कभी-कभी खुले चर्चा सत्र होते हैं जिनमें बच्चे कोई भी प्रश्न पूछ सकते हैं. बच्चों के दिमाग में जो भी विचार हों वे उनपर खुल कर बहस कर सकते हैं. मिसाल के लिए : हमें सपने क्यों आते हैं? काले बादल ही बारिश क्यों लाते हैं? मक्के के पौधे में फूल ऊपर होते हैं और फल यानि मक्का नीचे - ऐसा क्यों? बारिश को ज़मीन तक पहुँचने में कितना समय लगता है? बकरी के मल में इतने छोटे-छोटे टुकड़े क्यों होते हैं? बुलबुले गोल क्यों होते हैं, वे चौकोन क्यों नहीं होते?

बच्चे दिन में काफी देर खेलते हैं - कभी स्कूल के अन्दर तो कभी बाहर. उन्हें लूडो, सांप-सीढ़ी, शतरंज, कैरम और क्रिकेट जैसे खेलों में बहुत मज़ा आता है. छोटे बच्चे लकड़ी के गुटकों और मोंटेसरी की शैक्षिक सामग्री से खेलते हैं. कई बच्चे परंपरागत खेल भी खेलते हैं - कबड्डी, नमक चोर, नारियल, बिल्ला, रेडडी, लुपा-छिपी, एक-दो, सीसल-पट्टी, घर-घर और बाटी (कंचे) आदि. झूले झूलने और स्थानीय सामग्री जैसे पत्ते, फूल, फल, बीज, टहनियां, कीड़े, पत्थर, फर्शी के टुकड़े इकट्ठे कर उनसे खेलने में बच्चे घंटों बिता देते हैं. मुक्त खेल और स्लाइड से फिसलना बच्चों के प्रिय खेल हैं.

ऊपर बाएं से घड़ी की दिशा में: मोंटेसरी पद्दति से सीखना-समझना, जिगसा पहेली में डूबे बच्चे, सभी की मनपसंद फिसल-पट्टी, टहनियों और फूलों से बनी दौडती चरखियां

शुक्रवार सामूहिक गान से शुरू होता है. जो बच्चे गाना चाहते हैं वो इसमें शामिल होते हैं. उसके बाद स्कूल की सफाई, रखरखाव, मरम्मत और सामान की गिनती का वक्त होता है. तब सारी झाड़ूयों, बाल्टियों, टब, मग और पोछे के कपड़ों की गिनती होती है. तब छत से लटके मकड़ी के जालों को साफ़ किया जाता है, टीचिंग-एड्स और खिलौनों की टूट-फूट ठीक की जाती है और फर्श पर गोबर लीपा जाता है. इस रखरखाव के काम का इनाम 10.30 बजे मिलता है. तब पूरा स्कूल मिलकर चने-मुरमुरे, मौसमी फल, खजूर और मेहमानों द्वारा लाई गयी चीज़ें खाता है.

फर्श पर गोबर से साप्ताहिक लिपाई ►

इमली महुआ में गीत-संगीत सत्र

शुक्रवार साप्ताहिक हाट का दिन होता है. उस दिन मिट्टी का काम सीखने वाले बच्चे 11 बजे के करीब मिलन के साथ अपना सामन बेचने बाज़ार जाते हैं. बारी-बारी से उनके साथ कुछ और बच्चे भी बाज़ार जाते हैं. वे हफ्ते भर के लिए राशन और हरी सब्जियां खरीदते हैं. छोटे बच्चे स्कूल में रूककर खेलते हैं या फिर अपूर्ण कार्य को पूरा करते हैं. उस दिन हफ्ते भर का प्लास्टिक आदि कचरा जिसे रीसायकल नहीं किया जा सकता है इकट्ठा कर, स्कूटर पर 13-किलोमीटर दूर कोंडागांव भेज दिया जाता है.

सभी लोग शनिवार का इंतज़ार करते हैं, क्यूंकि वो दिन स्कूल के बाहर बिताया जाता है. छोटे बच्चों के दो समूह, अलग-अलग जंगल या पहाड़ी पर पिकनिक मनाने चले जाते हैं. रास्ते में बातें करते, खेलते, पेड़ों पर चढ़ते, कभी लूडो सांप-सीढ़ी खेलते, जंगली फल और बेर खाते, और पत्थर, बीज, फूल आदि इकट्ठे करते जाते हैं. वो नज़दीक से प्रकृति को देखते और अनुभव करते हैं. दोपहर का खाना खाने के बाद ही वो पिकनिक से वापिस लौटते हैं. बड़े बच्चे साइकिल पर आसपास के गाँवों और शहरों को दौरा करते हैं, या किसी महत्वपूर्ण ऐतिहासिक, सांस्कृतिक या प्राकृतिक सुन्दरता वाले स्थान पर जाते हैं. इस ट्रिप में वो साइकिल पर 20 से 50 किलोमीटर का चक्कर लगाते हैं. रविवार वाले दिन लोग आराम करते हैं और अगले हफ्ते की तैयारियां करते हैं.

स्कूल में लगातार मेहमानों के आने-जाने, नियमित स्कूल ट्रिप्स, लाइब्रेरी की ढेरों किताबें और पढ़ने की ज़बरदस्त ललक से स्कूल ने यह सुनिश्चित किया है कि बच्चे सामान्य पढाई, लिखाई और गणित के साथ-साथ अन्य वास्तविक्तायों से भी अवगत हों.

साप्ताहिक पिकनिक: छोटे बच्चे बरगद की जड़ों से झूलते हैं और बड़े बच्चे दिन भर की साइकिल सैर पर जाते हैं

बलेंगापारा और उसके आसपास की वास्तविकता[5]

आधुनिकता अभी भी बलेंगापारा में पूरी तरह नहीं पहुंची है. इसलिए वहां के लोग अभी भी प्रकृति के साथ नजदीकी से जुड़े हैं. वहां पैसों पर आधारित अर्थव्यवस्था की पकड़, अभी भी कमज़ोर है. आदिवासी अपने भोजन के लिए अभी भी घूमते हैं, शिकार करते हैं, मछली पकड़ते हैं और खेती के साथ-साथ जानवर भी पालते हैं. जंगलों के साथ आदिवासियों का जीवन करीबी से जुड़ा है.

लगभग हरेक घर में जानवरों के लिए एक अहाता या बाड़ा होता है (गाए-भैंस, सूअर और मुर्गियों के लिए). एक स्थान पर सरल औज़ार और उपकरण रखे होते हैं. दूसरा स्थान अनाज और अन्य भोजन रखने के लिए निश्चित होता है. घर में कद्दू, लौकी, जिमीकंद, केले, सीताफल, पपीते, नीबू, अमरुद, कड़ी-पत्ते, लोबिये, बीन्स, गोंगुरा, अम्बाडी के साथ-साथ मिर्च और गन्ना भी उगाया जाता है.

धान भंडारण

घर के सामने लौकी की तुम्बियाँ

घर के बगीचे की विविधता

5. इस खंड में गाँवों की उन जीवनशैलियों का संक्षिप्त वर्णन है जिनका स्कूली शिक्षा पर कुछ असर हो सकता है.

धान, कोदो-कुटकी, काले-चने के साथ-साथ कुल्थी दाल भी उगाई जाती है. इस आहार को जंगलों से लाये भोजन द्वारा और पौष्टिक बनाया जाता है. जंगलों से मशरूम (कुकुरमुत्ते), कोमल बांस की टहनियां, बेर, फल, शहद (छत्तों में धुएं द्वारा मधुमक्खियों को भगा कर इकट्ठा किया), तरह-तरह की खाने योग्य हरी पत्तियां, इमली, कीड़े-मकोड़े, लाल चींटी की इल्लियों (चपोडा) को इकट्ठा किया जाता है.

जंगलों से खाने की चीज़ें इकट्ठी करने के साथ-साथ आदिवासी छोटे जानवरों का शिकार भी करते हैं. चिड़ियाएँ, जंगली मुर्गे, मेंढक, चूहे, गोह, खरगोश के साथ-साथ वे कभी-कभी बंदरों, जंगली बिल्लियों, कुत्तों और जंगली लोमड़ियों का भी शिकार करते हैं. इलाके में बहुत तालाब और नदियाँ हैं जहाँ से वे सिंघाड़े, मछलियाँ, केंकड़े, झींगा, घोंघे आदि इकट्ठा करते हैं. जो आहार बचता है विशेषकर मशरूम, मछली, गोश्त और मिर्च उसे बांस से लटकाकर चूल्हे का धुआं दिखाया जाता है. बाद में या तो उसे खाया जाता है, पड़ोसियों को भेंट किया जाता, या फिर पैसों की ज़रुरत पड़ने पर उसे बेंच दिया जाता है.

मछली, मिर्ची और मशरूम्स आदि को धुआं लगाने के लिए चूल्हे के ऊपर बांस के ढाँचे पर रखा जाता है

महुए के प्रसिद्ध पेड़ के फूलों को सुखाकर पूरे साल के लिए इकट्ठा किया जाता है. इन फूलों से तेज़ और पवित्र दारु - मान्ध निकाली जाती है. पीने के साथ-साथ उसे व्यापारियों को बेंचा भी जाता है. खजूर के पेड़ से सींध-सल्फी और फिशटेल ताड़ के पेड़ से रुख-सल्फी निकाली जाती है. अंकुरित धान (लांडा) के पिसे चावल से बियर जैसा एक पेय हरेक घर में बनता है. इन सभी नशीले पेयों का घरों, सामुदायिक समारोहों, त्योहारों, पूजा स्थलों और साप्ताहिक हाट (स्थानीय बाज़ार) में सेवन होता है. नशीले पेयों को अच्छी सेहत और खुशहाली का प्रतीक माना जाता है. रोचक बात यह है कि पालतू जानवरों को मुख्यता उनके गोबर और गोश्त के लिए पाला जाता है. आदिवासी मानते हैं कि गाय का दूध सिर्फ बछड़े के लिए ही होता है. यह उनकी संवेदना और विवेक दर्शाता है.

ऊपर से घड़ी की दिशा में: ताड़ के पेड़ से ताड़ी निकलना, पर्व के समय मंदिर में नगाड़ा बजाकर गांववालों का मनोरंजन करना, ऊंचे फर्श वाली गौशाला जिससे बारिश का पानी नीचे से बह सके

प्रकृति में सब चीज़ों की खरीद-बेच पैसों से नहीं होती है. व्यापार में चीज़ों की अदला-बदली अभी भी की जाती है. उदाहरण के लिए लोहार को उसकी सेवायों के लिए पैसे नहीं दिए जाते हैं. फसल की कटाई के बाद लोहार और उसकी पत्नी उन सभी गाँवों का दौरा करते हैं जहाँ उनकी सेवायों के ज़रुरत होती है. वो जिस घर में जाते हैं वहां उन्हें भोजन मिलता है. साथ में उन्हें कुछ धान और काला चना भी भेंट किया जाता है.

आदिवासी माँ अपने बच्चों के साथ

इसी प्रकार गुनिया (गाँव का डॉक्टर जो बीमारियों के लिए परंपरागत जड़ी-बूटियाँ देता है) और सिरहा (शमन जो मृत आत्मायों को बुलाता है) के लिए भी एक विशेष पर्व आयोजित किया जाता है. जिन मरीजों का इन लोगों ने इलाज किया होता है वो उस दिन आत्मा से किये अपने वादे के अनुसार भेंट लाते हैं. अगर वो जानवर भेंट करते हैं तो उनकी बलि चढ़ाई जाती है और फिर पूरा गाँव उस दावत में शामिल होता है.

परिवारों में बहुत प्रबल सहयोग की भावना होती है. वे जन्म, शादी, मृत्यु आदि के अवसर पर एक-दूसरे की बहुत सहायता करते हैं. इन अवसरों पर लोग धान, काला चना, महुए का नशीले पेय भेंट देते हैं और साथ में साल पेड़ के पत्तों से दोने / पत्तल बनाने में भी मदद करते हैं.

दोने, पत्तल बनाने की कला घोटुल में सीखी जाती है

इन गाँवों के आदिवासी काफी प्रेममय और शर्मीले रूप से बाहर के मेहमानों का आदर-सत्कार करते हैं. यहाँ के लोग बहुत धीमी आवाज़ में बोलते हैं. केवल जानवरों को इकट्ठा करते समय, या फिर दूर से किसी को बुलाते समय ही वो जोर से चिल्लाते हैं. बड़े लोग, बच्चों के साथ बहुत इज्ज़त से पेश आते हैं और उनके व्यक्तित्व का आदर करते हैं. बच्चों और उनके पालकों में अक्सर बराबरी के सम्बन्ध होते हैं. आदिवासी बच्चों की परवरिश परिवार और समुदाय द्वारा, एक सहयोग के माहौल में होती है.

छोटी उम्र के बच्चों को काम के लिए मजबूर नहीं किया जाता है. उन्हें घर का काम करने के लिए विवश नहीं किया जाता है. छोटे बच्चे, बड़ों को काम करते हुए देखते हैं, उनका अनुकरण करते हैं और फिर खेल-खेल में उसमें भाग लेते हैं. माँ, पड़ोसियों, या बड़े भाई-बहन के साथ जाकर हैंडपंप से पानी लाना, घर के कामों में हाथ बंटाना, बागबानी, जानवरों की देखरेख, महुए के फूल बीनना, जलाऊ लकड़ी और गोबर इकट्ठा करना और घर की मरम्मत के कामों में बच्चे हाथ बंटाते हैं.

समतावादी होने के नाते आदिवासी समाज में सत्ता के ढांचे न्यूनतम हैं. गाँव के मुखिया की वेशभूषा गाँव के अन्य लोगों जैसी ही होती है. महिलायों और पुरुषों के सामान अधिकार होते हैं. समाज में उनके मत का सम्मान होता है - विशेषकर शादी और तलाक के मामले में. जहाँ पुरानी पीढ़ी के लोग अभी भी परंपरागत पोशाक पहनते हैं, वहीँ नई पीढ़ी ने देश के लोकप्रिय कपड़े जैसे सलवार-कमीज़ और पैंट-शर्ट आदि पहनना शुरू कर दिया है.

जैसी माँ, वैसी बेटी: नक़ल करते करते सीख जाना

घोटुल: सीखने की एक परंपरा जो अब लुप्त हो रही है

2009 तक शाम के समय, बलेंगापारा में युवतियों को इमली महुआ के सामने स्थित एक बड़े ढांचे की ओर जाते हुए देखा जा सकता था. वो चुपचाप उस स्थान के सफाई करने के बाद घर लौट जाती थीं. फिर रात के खाने के बाद बहुत सारी लड़कियां वहां वापिस लौटती थीं. उनके साथ बिस्तर, कंघी और दातून होती थी. उनके पास कुछ साल के पेड़ की पत्तियां भी होती थीं जिनसे वो अपने मित्र लड़कों के लिए बीड़ियाँ बनाती थीं. लड़कियों के आने से कुछ पहले गाँव के युवक अपने संगीत वाद्ययंत्रों और अन्य ज़रूरी सामान लेकर वहां पहुँच जाते थे.

यह स्थान घोटुल - आदिवासी समाज की एक प्राचीन संस्था थी. स्कूल नहीं जाने वाले गाँव के सभी युवक-युवतियां घोटुल के सदस्य होते थे. घोटुल, युवाओं द्वारा अन्य युवाओं के लिए चलाया जाता था. उपयुक्त बदलाव के बाद हर पीढ़ी उसे नयी पीढ़ी के लिए छोड़ जाती थी. घोटुल में नियमित जाना सभी युवक-युवतियों के लिए अनिवार्य होता था. सिर्फ मासिक धर्म के समय ही युवतियां छुट्टी ले सकती थीं. हर शाम घोटुल में नाच-गाना होता, जिससे नयी पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी से सीखती. घोटुल सदस्यों पर अन्य सामुदायिक गतिविधियाँ आयोजित करने की ज़िम्मेदारी भी होती. इसमें खेतों से खरपत बीनना, मकान निर्माण और मरम्मत, छतों की मरम्मत, खाद्यान्यों की सप्लाई, ईंधन, दोने-पत्तल बनाना और पर्वों, शादियों, मृत्यु आदि अवसरों पर खाना पकाना शामिल होता था. अगर घोटुल का कोई सदस्य किसी कारणवश गाँव छोड़कर जाता, तो उसके लिए घोटुल की अनुमति अनिवार्य होती.

घोटुल एक स्वीकृत और सुरक्षित स्थान था जहाँ युवक-युवतियों को शारीरिक खोज की अनुमति थी. घोटुल के अलिखित नियम के अनुसार वहां किसी के साथ भावनात्मक रिश्ता बनाने पर कड़ी पाबन्दी थी. उल्लंघन करने पर लोगों को धमकी दी जाती थी और उन्हें घोटुल से निष्कासित भी किया जा सकता था. दुर्लभ परिस्थितिओं में अगर कोई युवती गर्भवती हो जाती, तब युवक-युवती की शादी कर दी जाती. सभी युवक-युवती घोटुल में ही सोते. लड़कियां भोर होने से पहले ही घर चली जातीं, और लड़के सुबह होने के बाद घर जाते.

बाहरी दबाव के कारण बलेंगापारा के घोटुल को बंद करना पड़ा[6]. घोटुल बंद होने के बाद शिक्षा और समुचित कुशलताएँ सीखने की एक महत्वपूर्ण संस्था का अंत हो गया. उसके कारण युवा गाँव छोड़ कर जाने लगे, क्यूंकि उन्हें मिलने वाला सामाजिक समर्थन अब लगभग ख़त्म हो चला था.

बलेंगापारा में त्यागा हुआ घोटुल

6. इस रिपोर्ट को लिखते समय लेखकों को पता चला कि बेलंगापारा का घोटुल मार्च 2016 से, छह साल बंद रहने के बाद दुबारा शुरू हुआ. शुरू होने के कारण : समुदाय को समझ में आया कि क्योंकि घोटुल को समाज का सहयोग नहीं मिला था, इसलिए युवक गाँव छोड़ कर दिहाड़ी के लिए बाहर जाने लगे. बाहरी शहरों में वो बेईमानी के शिकार होते. एक ज़माने में बलेंगापारा के युवक-युवतियां अपने गानों और नाच के लिए मशहूर थे. पर धीरे-धीरे उस गुणवत्ता में गिरावट आई.

आदिवासी ज़िन्दगी में हंसने का एक विशेष स्थान है. बड़े और व्यस्क दिल खोल कर हँसते हैं. वो छोटे बच्चों को कभी-कभी चिढाते हैं और बच्चे जवाब में, बड़ों को भी चिढाते हैं. ऐसा लगता है जैसे वो बहुत खुश और संतुष्ट हों, जबकि परंपरागत मानकों के अनुसार वो आपको गरीब लगेंगे.

ऊर्जा और हंसी इस आदिवासी इलाके में आम बात थी, और ढोलक की ताल यहाँ की धड़कन थी. पर बहुत कम लोग ही इस माहौल के मूल्य को समझ पाए.

वुडस्मोक एंड लीफ कप्स - ऑटोबायोग्राफिकल फुटनोट्स टू द एंथ्रोपोलॉजी ऑफ़ द दूर्वा - मधु रामनाथन

स्कूल की विशेष बातें

1) आदिवासियों के जीवनशैली का स्कूल में प्रतिबिम्बन

इमली महुआ के बहुत से तौर-तरीके वही हैं जिन्हें बच्चे अपने परिवारों में अनुभव करते हैं. स्कूल इस बात से पूरी तरह सहमत है कि वहां होने वाली गतिविधियाँ आदिवासी जीवन के बिलकुल करीब हों.

घर में आज़ादी, स्कूल में स्वतंत्रता

आदिवासी बच्चे, माँ-बाप और रिश्तेदारों के दबाव में नहीं जीते हैं. वो अपना दिन कैसे बिताएं, वो क्या करें इस पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं होता है. पर साथ-साथ समुदाय के लोग, बच्चों पर अपनी नज़र रखते हैं जिससे गाँव के तालाब, नालों के आसपास या गाँव के किसी सुनसान इलाके में उन्हें कोई शारीरिक नुकसान न पहुंचे.

इससे शायद हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ऐसी संवेदनाएं तब पैदा होती हैं जब लोगों के दिलों में आंतरिक ख़ुशी हो, और उन्हें बाहरी दुनिया ने बेईमानी न सिखाई हो. यहाँ के लोगों की जीवनशैली प्रकृति के अनुरूप है. यहाँ पर जीवन में द्वन्द का अभाव है. इसलिए यहाँ के लोगों में स्वतंत्रता और ज़िम्मेदारी खुद-ब-खुद आ जाती है.

इमली महुआ में बच्चे अपनी दिनचर्या खुद तय करते हैं. उन्हें कुछ भी करने के लिए मजबूर नहीं किया जाता है, पढने के लिए भी नहीं. बच्चा अगर चाहे तो वो स्कूल में पूरे दिन मुक्त होकर खेल सकता है. चाहे तो कोई स्थानीय खेल, या स्कूल के बाहर क्रिकेट, वॉलीबॉल आदि खेल सकता है या फिर स्कूल के अन्दर शतरंज, कैरम, नाट्स एंड क्रॉस. या फिर बच्चा, अन्य कक्षाओं के बच्चों को खेलते हुए या उन्हें काम करते हुए देख सकता है. बच्चे खुद निर्णय लेते हैं कि दिन में वो क्या और कब पढेंगे. बच्चे ही तय करते हैं कि वो उस दिन किसी शिक्षक, बड़े बच्चे अथवा अपनी ही कक्षा के किसी बच्चे की मदद लेंगे. स्कूल में सारी पढाई बच्चे अपनी प्रेरणा से करते हैं. पढाई की दिशा भी बच्चे खुद ही तय करते हैं.

ऊपर से : खुद सीखने के बाद छोटे बच्चों को सिखाना; कैरम खेलते बच्चे; बड़े बच्चों के स्वंय-अध्ययन को छोटे बच्चे ध्यान से देखते हुए

स्कूल में बच्चे अपनी मर्ज़ी के अनुसार समय गुजारें यह छूट सबसे पहले सूरजमुखी समूह के बच्चों को मिली. पर 2015 के अंत में अन्य समूहों ने भी इसी स्वतंत्रता की मांग की. इस मुद्दे पर स्कूल में चर्चा भी हुई.

गौतम और मिलन ने इस प्रस्ताव पर अपनी शंका ज़ाहिर की. उन्हें लगा कि छोटे बच्चे इस स्वतंत्रता का ठीक प्रकार उपयोग नहीं कर पाएंगे. पर काफी चर्चा के बाद स्कूल के सभी बच्चों को यह आज़ादी देने, और छह महीने बाद उसकी समीक्षा करने का निर्णय लिया गया.

स्वतंत्रता के मुद्दे को लेकर स्कूल के तीन व्यस्क सदस्यों में अभी भी असहमति है. मिलन को लगता है कि स्कूली स्वतंत्रता, बड़े होने पर बच्चों के लिए ठीक नहीं होगी. "मैं ऐसी स्वतंत्रता देने के खिलाफ हूँ. अभी तो बच्चे मज़े में खेल रहे हैं पर बड़े होने वो खुद को मुश्किलों में घिरा पाएंगे."

दूसरी ओर गौतम का मत भी ज़ोरदार है, जो उनके शैक्षणिक दृष्टिकोण में भी झलकता है. "पहले-पहले मुझे यह स्वतंत्रता का मसला कुछ अजीब सा लगा, खासकर अगर आप उसे पालकों की दृष्टि से देखें. पर अब मुझे यह स्वतंत्रता अच्छी लगती है, और उसे यहाँ होना ही चाहिए. परन्तु पालकों के नज़रिए से यह कुछ अलग ही होगा. कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि क्या स्कूल में पढने की बजाए खेलने से भविष्य में बच्चों को कोई मुश्किल तो नहीं होगी. मेरे समूह के 15 बच्चों में से केवल 4-6 ही पढाई की मांग करते हैं. शुरू में मेरी कक्षा के बच्चों को किताबें पढने में कुछ संघर्ष करना पड़ा था. फिर मैंने उन्हें पढना सिखाया और अब वे थोड़ा-बहुत खुद पढ़ पाते हैं.

"हमें यह आज़ादी अच्छी लगती है. बच्चे अपनी मर्ज़ी के अनुसार जब चाहें पढ़ सकते हैं. इस स्कूल में परीक्षाएं नहीं होती हैं. पर आज तो सरकारी स्कूलों में भी परीक्षाएं नहीं होती हैं."

गुनुराम नेताम - जमुना के पिता

"मुझे लगता है कि सूरजमुखी समूह की लड़कियों ने प्रगति की है और वो ज़िम्मेदार बनी हैं. हाँ, लड़के ज़रूर कुछ अलग हैं. अगर नियमित पढाई होती तो शायद लड़कों को उससे ज्यादा फायदा होता. लड़कियां घरों में तमाम जिम्मेदारियां उठाती हैं, और उन्हें बहुत काम करना पड़ता है. इसलिए उन्हें मेहनत की आदत पड़ गयी है. पर इस उम्र के लड़कों पर घर की ज़िम्मेदारी नहीं होती है." (यानि अगर लड़कों के साथ अलग तरीका अपनाया जाता तो अच्छा होता.)

साथी (SAATHI) संस्था के भूपेश तिवारी ने कई दशकों से बस्तर के आदिवासियों के साथ काम किया है, "यह ज़रूरी नहीं है कि पढाई कक्षा की चारदीवारी के अन्दर ही हो. अगर बच्चे को उसकी मर्ज़ी के अनुसार सीखने दिया जाए तो बाद में उसे जो सिखाया जायेगा उसे वह ज्यादा समझेगा और याद रखेगा. अगर बच्चे का दिमाग कक्षा के बाहर विचर रहा हो, तब फिर आप चाहें उसे कुछ भी पढ़ायें बच्चा उसे नहीं सीखेगा."

प्रयाग के अनुसार, "यहाँ हरेक को छूट और स्वतंत्रता है. आज़ादी के कारण हम फलते-फूलते हैं और उसके अभाव में हम मुरझाते हैं. यही बात सामूहिक और परामर्श द्वारा लिए निर्णयों के लिए भी सच है."

इस रिपोर्ट के लिखे जाते समय, बच्चों ने खुद अपने शिक्षकों को चुनने का निर्णय लिया. यह टीचर कोई भी व्यस्क, बड़ी उम्र का छात्र, या स्कूल का कोई शैक्षिक साधन हो सकता था. इस मुद्दे पर स्कूल में चर्चा हुई. बाद में निर्णय लिया गया कि अगर बच्चे किसी खास क्लास की मांग करते हैं तो स्कूल उसे ज़रूर पूरा करेगा बशर्ते उस व्यक्ति के पास समय हो और उस विषय में रूचि हो.

जो चाहे वह स्कूल में कोई नयी चीज़ पढ़ा सकता है. अगर कोई ऐसा प्रस्ताव रखे तो कोई भी उसके क्लास में जाकर पढ़ सकता है.

प्रजातंत्र – जीवन का तरीका

एक प्रजातान्त्रिक देश में यह बेहद ज़रूरी है कि समता, भिन्नता का सम्मान, सहयोग और न्याय जैसे मूल्य वहां के नागरिकों में आयें. परिवार, पड़ोस और स्कूल ऐसे स्थान हैं जहाँ बच्चे यह मूल्य आत्मसात कर सकते हैं. दुर्भाग्यवश, भारत में अधिकाशं स्कूल अनुशासन और पदक्रम का रवैया अपनाते हैं. स्कूलों में प्रजातंत्र नहीं होता है जबकि नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क में उसकी पुरजोर सिफारिश की गयी है.

बलेंगापारा और उसके आसपास के गाँवों में आदिवासी संस्कृति के अनुसार पूरा समुदाय सामूहिक रूप से निर्णय लेता है. खासकर उन मुद्दों पर जो परिवार के बाहर की ज़िन्दगी पर प्रभाव डालते हैं. जब यह बैठक होती है तो उसमें हरेक कोई शामिल होता है. जब 2007 में बलेंगापारा के समुदाय को स्कूल खोलने के प्रस्ताव पर निर्णय लेना था तो उसमें न केवल सब बड़े लोग, पर बच्चे और बूढ़े लोग भी शामिल हुए.

सामूहिक निर्णय की इस प्रवृति की परंपरा के कारण इमली महुआ के संचालन के सारे निर्णय[7], स्कूल का पूरा समुदाय मिल कर लेता है. इसमें 60 बच्चे और 3 टीचर शामिल हैं. जब किसी मुद्दे पर कोई अहम् निर्णय लेना होता है तो बैठक में सभी बच्चे और व्यस्क शामिल होते हैं. हरेक सदस्य का एक वोट होता है. अगर किसी मुद्दे पर पूरी तरह से सहमति नहीं बन पाती है तो निम्न प्रक्रिया अपनाई जाती है. मुद्दे पर चर्चा करके एक आम राय बनाने की कोशिश की जाती है. अगर अल्पसंख्या वाले लोग निर्णय से बहुत नाखुश हैं, तो उस निर्णय को टाल दिया जाता है. या फिर उस निर्णय को थोड़े समय के लिए लागू करके उसकी समीक्षा की जाती है. जो भी अंतिम निर्णय लिए जाते हैं समय-समय पर उनकी समीक्षा सभी बच्चे और टीचर मिलकर करते हैं.

पूरा स्कूल निर्णय लेने में शामिल होता है

बहुत से स्कूल प्रजातंत्र का ऊपरी तड़का लगाकर उसके साथ मज़ाक करते हैं. पर मेरे लिए तो प्रजातंत्र गर्भावस्था जैसा है - वहां थोड़े से काम नहीं चलता है.

डेनियल ग्रीनबर्ग, सडबरी वैली स्कूल

जिन निर्णयों में बच्चे शरीक होते हैं उसमें स्कूल के कार्य सम्बन्धी और संचालन की सभी बातें शामिल होती हैं. जैसे - टाईमटेबल बनाना, छुट्टियों की समीक्षा, कौन बच्चे शैक्षिक सैर-सपाटे पर जायेंगे, स्कूल की ड्यूटी पर कौन-कौन होगा, कौन से विषय पढाये जायेंगे जैसे सारे मुद्दों की समीक्षा होती है. बच्चों के निर्णयों को हमेशा गंभीरता से लिया जाता है. इसके पीछे गहरा विश्वास है कि छोटे बच्चे भी अपने बारे में ज़िम्मेदार निर्णय ले सकते हैं.

स्कूल में गैरहाजिरी और समय को लेकर लचीलापन

आदिवासी परिवारों के बच्चे अपने माता-पिता, भाई-बहन, रिश्तेदारों और समाज के अन्य सदस्यों से सीखते हैं. यह सीख प्राकृतिक रूप से बिना सिखाये होती है. बच्चे अन्य लोगों को देखते हैं, उनकी नक़ल करते हैं, और फिर बड़ों की गतिविधियों में भाग लेकर, कुछ गलतियाँ करके सीखते हैं. औपचारिक शिक्षा, अक्सर सामुदायिक शिक्षा में बाधा बनती है क्यूंकि अब बच्चे अपने समाज के बड़ों के बीच नहीं रह सकते हैं. इस अहम् मुद्दे के मद्देनज़र इमली महुआ को केवल दिन का स्कूल रखा गया. जबकि तमाम सरकारी आश्रम शालाएं आवासीय होती हैं जहाँ बच्चों को अपने परिवार से दूर रहना पड़ता है. बाकी स्कूलों की तुलना में इमली महुआ स्कूल बहुत लचीला है.

---

7. घरों में शायद सामूहिक निर्णय की प्रक्रिया न हो.

कभी-कभी कोई बच्चा स्कूल इसलिए नहीं आता है क्यूंकि उस दिन उसका स्कूल जाने का मन नहीं होता. अगर बच्चे का मन नहीं है तो माँ-बाप उसपर स्कूल जाने के लिए कोई दबाव नहीं डालते हैं. अधिक-से-अधिक वे बच्चे के स्कूल न जाने का कारण पूछ लेते हैं.

इमली महुआ में गैरहाजरी पर बच्चों को डांट नहीं पड़ती है. वैसे हाजरी के समय बच्चे किसी दूसरे की गैरहाजिरी का कारण बता सकते हैं. बच्चे कई कारणों से स्कूल से छुट्टी लेते हैं.

खेती में मर्द और औरतें दोनों मिलकर काम करते हैं. अक्सर मर्द हल जोतते हैं. बुआई, निंदाई, खाद डालना, कटाई आदि काम मर्द-औरत दोनों करते हैं. बच्चे भी खेती में मदद करते हैं (खासकर बुआई से पहले, निंदाई और कटाई में). नौ साल की उम्र के छोटे बच्चे भी बड़ी कुशलता से हंसिये से धान की फसल काटते हैं.

इमली महुआ की छात्रा परिवार के खेत में धान काटने में मदद करती हुई

मर्द खेती के काम से बीच-बीच में छुट्टी लेते हैं और एक ग्रुप बनाकर शिकार करने जाते हैं. अक्सर युवा लड़के इन अभियान में अपने पिताओं के साथ हिस्सा लेते हैं. घर निर्माण, छत मरम्मत, सूअर मारने और पेड़ काटने का काम मर्द करते हैं. जबकि ईंधन, लकड़ी, फर्श लीपने, गोबर, दीवार और रेलिंग की छोटी-मोटी मरम्मत, दीवार और घर की सजावट का काम महिलायों का होता है. ईंटें बनाने का काम पूरा परिवार मिलकर करता है.

"दरअसल स्कूल सीखने का मात्र एक कृत्रिम ढांचा है. प्रकृति और घर पर बच्चे बेहतर ढंग से सीखते हैं. उनकी तुलना में स्कूल में बच्चे कम सीखते हैं."

प्रयाग जोशी

महुये के फूल बीनना, उन फूलों की जानवरों से रक्षा करना, तेंदू के पत्ते और इमली इकट्ठी करना जैसे काम सभी लोग मिलकर करते हैं. झाड़ू, चटाई और टोकरियाँ बनाने के लिए तरह-तरह की घासें इकट्ठी करने का काम औरतें करती हैं. मर्द बांस काट कर लाने का काम करते हैं.

महिलाओं और बच्चों द्वारा इकट्ठी घास से बनीं झाड़ू

जीवन जीने की यह सब कुशलताएँ बच्चे, अपने बड़े-बुजुर्गों से सीखते हैं.

इमली महुआ स्कूल में समय भी लचीला है. स्कूल में न तो घंटी बजती है और न ही स्कूल का गेट बंद होता है. बच्चे स्कूल में कभी भी आ सकते हैं, और जब चाहें जा सकते हैं. इसका मतलब है कि लड़के खेती में, और घर पर खाना पकाने में मदद करते हैं. लड़कियां हैंडपंप से पानी लाने में और सुबह का भोजन बनाने में मदद करती हैं. मासिक-धर्म के समय यह काम अन्य बच्चे, या फिर पति करता है.

क्यूंकि स्कूल में लचीलापन है और वह समाज की ज़रूरतों के प्रति उदार है शायद इसीलिए इमली महुआ स्कूल बच्चों के लिए एक आकर्षक जगह है.

पर एक जगह हाजिरी बहुत मायने रखती है. APCT ट्रस्ट हरेक बच्चे को वार्षिक स्कालरशिप देती है. यह राशि ट्रस्ट द्वारा खोले पब्लिक प्रोविडेंट फण्ड अकाउंट में जमा होती है. इस अकाउंट में बच्चे की माँ जॉइंट-अकाउंट होल्डर होती है. बच्चा किस कक्षा में है, उससे उसका स्कालरशिप तय होता है और फिर निर्धारित राशि अकाउंट में जमा की जाती है. यह निर्धारित राशि छात्र की हाजिरी पर निर्भित होती है. सम्पूर्ण स्कालरशिप के लिए 90 प्रतिशत हाजिरी होना अनिवार्य है. एक ओर स्कूल का लचीलापन और दूसरी ओर स्कालरशिप की हाजिरी पर निर्भरता में, एक द्वन्द नज़र आता है. लेकिन बच्चों को स्कूल में बाकी लाभ जैसे पुस्तकें, दूध, फल आदि भी हाजिरी के अनुसार ही मिलते हैं. स्कालरशिप स्कूल जाने की प्रेरणा नहीं देता है. हाजिरी अन्य बातों पर निर्भर करती है खासकर इस बात पर कि उस समय बच्चे का परिवार किस काम में लगा है.

स्कूल में शिक्षकों के लिए नियम भी न्यूनतम हैं. स्कूल में शिक्षक कितना समय बिताते हैं, वेतन उसपर निर्भर करता है, न कि उनकी औपचारिक डिग्री या उनकी कुशलतायों पर. शिक्षकों में एक आपसी समझ है. वे छुट्टी केवल ज़रुरत के समय ही लेते हैं और स्कूल में कम-से-कम दो शिक्षक हर समय ज़रूर मौजूद होते हैं.

सहयोग करें, स्पर्धा से बचें

क्यूंकि आदिवासियों का जीवन स्पर्धा नहीं, बल्कि सहयोग पर आधारित है (नंदिनी एस. 2009-2010) इसलिए वहां हर मौके पर परिवार एक-दूसरे की मदद के लिए इकट्ठा होते हैं. इस भावना को स्कूल में भी देखा जा सकता है. इमली महुआ स्कूल जान-बूझ कर किसी भी अंतर-स्कूलीय खेल-कूद आदि प्रतिस्पर्धाओं में हिस्सा नहीं लेता है. स्कूल में भी किसी भी गतिविधि में, बच्चों के बीच प्रतिस्पर्धा नहीं होती है.

आदिवासी जीवनशैली बाँटने और सहयोग पर आधारित है

सहयोग की भावना की साफ़ झलक तब मिली जब स्कूल दो शिफ्टों की बजाये एक शिफ्ट में लगना शुरू हुआ. जब स्कूल दो शिफ्ट चलता था तब सभी बच्चों को स्कूल में दोपहर का खाना दिया जाता था. पर जब सब बच्चे एक साथ आने लगे तब 60 बच्चों के लिए स्कूल में एकसाथ भोजन पकाना संभव नहीं था. इस मुद्दे पर चर्चा हुई और कुछ बच्चे घर से खाना लाने के लिए राज़ी हो गए. पर कुछ बच्चों के लिए घर से खाना लाना संभव नहीं था. चर्चा के दौरान कई व्यस्क और बच्चे अपने घरों से बाकी बच्चों के लिए ज्यादा खाना लाने को तैयार हो गए. स्कूल में भी कुछ ज्यादा भोजन बनाया जाने लगा जिससे की सभी बच्चों को भोजन मिल सके.

इमली महुआ में दोपहर का भोजन

पूरा स्कूल एक साथ खाना खाता है. उस समय बच्चों के बीच खूब बातचीत होती है. भोजन किसी कक्षा या फिर बीच में किसी खुले स्थान में खाया जाता है. सुबह-सुबह छोटे बच्चे दो बड़े एलुमिनियम के बर्तनों में पानी भर कर रखते हैं. यह पानी झूठे बर्तन धोने के लिए होता है. बड़े बच्चे किचन में टेट्रापैक डिब्बों से कीटाणुमुक्त दूध, स्टील के ग्लासों में लौटने का काम करते हैं. गिनती के बाद मौसमी फलों को दो बार पानी में धोकर उन्हें एक स्टील की बाल्टी में भोजनस्थल तक ले जाया जाता है. एक बड़े बर्तन में सूखे खजूर, प्रेशर कुकर में दाल-चावल और बड़ी कढ़ाई में सब्जी रखी थी. इन सबको मिलन कैंपस के सदस्यों और मेहमानों के लिए बनाया है. खाने में कुछ सलाद और आचार भी होता है.

भोजन के समय सब बच्चे घर से लाये अपने डिब्बे खोलते हैं और एक बड़े गोले में बैठते हैं. छोटे भाई-बहन, पास बैठ कर एक ही डिब्बे में से खाते हैं. बच्चों के डिब्बों में चावल के साथ एक तरल सब्जी ज़रूर होती है जिसमें हरी सब्जियां, कंद, आलू, टमाटर, लौकी, कद्दू, बीन्स और मशरूम होते हैं. इस तरल सब्जी में दाल हो न हो, पर इमली ज़रूर होती है.

बच्चे सब्जी का निरीक्षण करते हैं और फिर बेहिचक होकर अपनी भावनाएं प्रकट करते हैं. उसके बाद बच्चे भूख के अनुसार भोजन लेते हैं या फिर दूसरों को खाना परोसने का बहाना करते हैं. वे सब्जी के बर्तन को किसी दूसरे की ओर बढ़ा देते हैं, इस उम्मीद में की शायद कोई और स्वादिष्ट भोजन उनके पास आये. लोग एक-दूसरे के डिब्बे से भी खाना खाते हैं. इस तरह हरेक को, दूसरों का खाना चखने को मिलता है. इसलिए आपके डिब्बे के नापसंद भोजन के ख़त्म होने की सम्भावना बढ़ जाती है.

यह अनिवार्य है की हरेक कोई अपने हिस्से का दूध पिए, फल और सूखे खजूर खाए. उन्हें खाने में कोई नखरे नहीं करता है. पर अगर कुछ गिलास दूध और फल बचते हैं तो उससे बड़े बच्चों को कुछ चिंता होती है क्यूंकि उन्होंने पक्की तरह गिन कर, दूध के गिलास और फल रखे होते हैं. दूध और फल तभी बचते जब कुछ लोग अपना हिस्सा नहीं लेते हैं. मुजरिम पकड़ना मुश्किल होता है क्यूंकि हो सकता है वो उस समय कैंपस में कोई ज़रूरी काम कर रहा हो.

सब बच्चे अपने खाने के डिब्बे और गिलास खुद धोते हैं. वो केले के पेड़ों के नीचे अपने बर्तनों को रगड़ते हैं. वे इस काम में एक-दूसरी की ख़ुशी-ख़ुशी मदद भी करते हैं. बर्तन रगड़ने के लिए वो या तो केले के पत्ते का छोटा टुकड़ा अथवा सूखी घास उपयोग करते हैं. बाज़ार में बिकने वाले स्क्रबर से यह बेहतर काम करते हैं. खाने के डिब्बों और गिलासों को फिर दो बार एक बड़े पाने के टब में धोया जाता है और फिर उन्हें रख दिया जाता है. उसके बाद छोटे बच्चे वापिस खेलने चले जाते हैं या फिर किसी छाँव वाले स्थान पर आराम करते हैं. बड़े बच्चे भोजन के स्थान को साफ़ करते हैं, इस्तेमाल हुए पानी को दुबारा भरते हैं, और सब सामन को वापिस रखने के बाद ही अपने काम पर वापिस लौटे हैं. पड़ोसियों की मुर्गियां और कुछ कुत्ते भी भोजन के वक्त मौजूद होते हैं. उनपर किसी का ध्यान नहीं होता है और उन्हें कचरे के ढेर में से अपना खाना चुनने दिया जाता है.

2) सीखने की कुशलताएँ और ज्ञान जो बुनियादी ज़रूरतों से जुड़ा हो

कुशलताएँ जो बुनियादी ज़रूरतों से जुड़ी हों

इमली महुआ ने उन गतिविधियों पर ज्यादा बल दिया जो लोगों की भौतिक ज़रूरतों जैसे रोटी, कपड़े और मकान से जुडी थीं.

रोटी यानी भोजन के लिए बच्चे किचन में काम आने वाली चीज़ों को खरीदते हैं, सब्जियां आदि उगाते हैं, अचार बनाते हैं और खाना पकाते हैं. जिन बच्चों की रूचि है वो रोज़ बागबानी करते हैं (लोगों को चुनने की आज़ादी है). गाँव की हाट जाने की गतिविधि साप्ताहिक है. खाना पकाने का कार्यक्रम कभी अनायास भी बन जाता है - जैसे जब स्कूल के बगीचे में तीन बड़ी लौकियाँ मिलीं तब खीर बनी.

स्कूल के बाग़ में उगाई हुई लौकी की फसल

गौतम से बच्चे तकली और चरखा चलाना बहुत रूचि से सीखने हैं. वे नियमित रूप से अपने कपड़ों की मरम्मत करते हैं. इसके लिए वो जोड़ियों या छोटे समूहों में, या तो किसी कक्षा या फिर स्टोर-रूम में जाते हैं. बच्चे कढ़ाई काम भी करते हैं जिसे उनके बस्तों या रूमालों पर देखा जा सकता है.

गाँव की हाट में सब्जियों की बिक्री

चरखे पर सूत की कताई

बच्चे छोटे-मोटे निर्माण कार्य, बढईगिरी, पेंटिंग, मरम्मत और स्कूल के अन्य कामों में भी अपना हाथ बंटाते हैं. गाँव के बढई और राज-मिस्त्री बच्चों को यह कुशलताएँ सिखाने को तैयार हैं. भविष्य में कुछ बड़े बच्चे शायद इन्हें सीखें भी.

कुशलताएँ और उद्योग कार्यक्रम

सूरजमुखी समूह के कुछ बच्चों ने स्कूल में पढाई के कार्य के साथ-साथ किसी उद्योग के बारे में भी सीखने का निर्णय लिया है. वर्तमान में बच्चों के पास निम्न विकल्प हैं:

कुम्हार के चाक पर

मिट्टी के बर्तन: मिलन एक परंपरागत कुम्हार हैं, और उन्होंने इस कुशलता को SAATHI के एक ट्रेनिंग प्रोग्राम में और निखारा. दो बच्चों ने मिट्टी के बर्तन बनाने का काम चुना है. मिलन दोनों बच्चों को यह काम सिखाते हैं. मिलन के मार्गदर्शन में बच्चे इस कला की पूरी प्रक्रिया में भाग लेते हैं. इसमें ट्रेक्टर से मिट्टी लाने, मिट्टी बनाने, बर्तन बनाने और उन्हें पकाने, उनका मूल्य तय करना, हिसाब-किताब रखना और बेंचना शामिल है. बच्चे कई चीज़े बनाना सीख रहे हैं - खासकर के दीवाली पर दिए, नवरात्री पर कलास, स्थानीय पर्व नवा के लिए पहियों पर चलते मिट्टी के बैल, गमले और मटके बनाते हैं. शुक्रवार को मिलन और बच्चे बाज़ार में मिट्टी का सामान बेंचने जाते हैं. मिलन को बच्चों में बड़े होकर, कुम्हार बनने की सम्भावना नज़र आती है.

मिट्टी की बनीं चीज़ें

मिलन, मिट्टी के बर्तन बनाना सिखाते हुए

स्कूल की शिक्षा और उद्योग का प्रशिक्षण: चार छात्र इस कोर्स में हैं. यह छात्र-शिक्षक सपरी और सेमर समूहों के बच्चों की पढाई में मदद करते हैं. छोटे बच्चों को उनका साथ अच्छा लगता है और उन्हें मज़ा भी आता है क्यूंकि सारी पढाई और बातचीत स्थानीय भाषा में होती है.

उद्योग का प्रशिक्षण ले रहे छात्रों की रोजाना मीटिंग होती है और महीने में एक बार उनकी प्रगति की समीक्षा की जाती है. विषय-वस्तु को लेकर उन्हें कुछ खास कुशलताएँ सिखाई जाती हैं. इन छात्र-शिक्षकों को छोटे बच्चों के साथ काम करने की खुली छूट दी जाती है.

छोटे बच्चे को सिखाती बड़ी छात्रा

स्कूल कैसे चलता है? छात्रों को इस पक्ष से भी अवगत कराया जाता है. हर साल अप्रैल के शुरू में दो छात्र प्रयाग के साथ NCERT दिल्ली जाते हैं और वहां से वे पाठ्यपुस्तकें खरीदते हैं. उसके बाद वे APCT की वार्षिक ऑडिट मीटिंग में भाग लेने चेन्नई जाते हैं. शुक्रवार वाले दिन वो कोंडागाँव जाते हैं जहाँ वे बैंकिंग और स्कूल के संचालन सम्बंधित अन्य बातें सीखते हैं.

जब हमने बच्चों का इंटरव्यू लिया तो उनमें से बहुत सारे बच्चों ने कहा की वे बड़े होकर शिक्षक बनना चाहेंगे. एक छात्र-शिक्षक दुलारी ने कहा कि वो बड़े होकर टीचर बनेगी और फिर इमली महुआ स्कूल में पढ़ायेगी. एक लम्बी अवधि की योजना के तहत इमली महुआ स्कूल 2030 तक चलेगा. तब ज़मीन की अनौपचारिक पट्टा समाप्त हो जायेगा. पर प्रयाग को इस बात की ज्यादा सम्भावना लगती है कि दुलारी जैसे बच्चे (जो शिक्षा विषय को लेकर बहुत प्रेरित हैं) इमली महुआ स्कूल के संचालन को, उससे पहले ही अपने हाथ में ले लें.

लाइब्रेरी और किताबों की दुकान : चार छात्रों ने यह कोर्स लिया है. लाइब्रेरी हफ्ते में तीन दिन शाम को 3 से 4 बजे तक खुली रहती है. लाइब्रेरी में सभी बच्चे खासकर पड़ोस के सरकारी स्कूल के बच्चे भी आ सकते हैं. लाइब्रेरी का पीरियड बहुत लोकप्रिय है और उसे संचालित करने वाले बच्चे अपना काम बड़ी कुशलता और मुस्तैदी से करते हैं. वे फटी किताबों की मरम्मत करते हैं, पुस्तकों को स्तर के हिसाब से अलग-अलग समूहों में रखते हैं, किताबें किसने लीं और वो वापिस आयीं या नहीं इसका रिकॉर्ड रखते हैं. बच्चे लाइब्रेरी में एक घंटे किताबें पढ़ते हैं और नियम से किताबें घर लेकर जाते हैं. इन चार बच्चों ने आपस में मिलकर स्वतंत्र रूप से लाइब्रेरी संचालन का अपना तरीका इजाद किया है जिसमें उधार ली गयी किताबों का हिसाब रखना भी शामिल है. पुस्तालय में पढने के लिए 100-150 किताबें हैं और उधार लेने के लिए कोई 200 किताबें हैं. 500 पुस्तकों का अभी भी लाइब्रेरी में पंजीयन होना बाकी है. उनमें से हर महीने 50 नयी किताबों को लाइब्रेरी में जोड़ा जाता है.

भैया ने अंग्रेजी की पुस्तक में से मिस मूर नामक लाइब्रेरियन की कहानी सुनायी. कवर पेज पर जो लिखा था वो उन्होंने हमें पढ़ कर सुनाया. पीछे वाले कवर पर लिखा था कि अमरीका में पुराने ज़माने में बच्चों के लिए कहीं भी पुस्तकालय नहीं थे. मिस मूर को लगा की बच्चों को किताबें पढनी चाहिए और उसके लिए अलग से एक विशेष कमरा होना चाहिए जहाँ बच्चों के लिए छोटी कुर्सियां और मेजें हों. कमरा गरम हो और बच्चों को किताबें घर ले जाने की इजाज़त हो. उन दिनों बहुत से लोग मानते थे की बच्चों को किताबें नहीं पढनी चाहिए, खासकर लड़कियों को, क्यूंकि बच्चों को किताबें ठीक से रखना नहीं आता.

(यह ममता, रनोती, संदाय, नेहा, सिमरन, दुलारी, बिन्देश्वरी, असीता, जमुना, सीमा और चन्द्रिका के सामूहिक इंटरव्यू पर आधारित है)

सैर-सपाटे से सीखना

बच्चे कई शैक्षिक सैर-सपाटों पर जाते हैं जिसमें वे जीवन सम्बन्धी कई बातें सीखते हैं. बड़े बच्चे दो बार पंचायत दफ्तर गए जहाँ उन्होंने पंचायत सदस्यों से चर्चा कर अपने गांवों की समस्यों को गहराई से समझा. बड़े बच्चे शनिवार को साइकिल पर अपने गाँव से पड़ोस की जगहों की सैर के लिए जाते हैं.

सभी बच्चे स्कूल में बिताये सालों में एक बार सेवाग्राम की सैर के लिए ज़रूर जाते हैं. बड़े बच्चे अपने शिक्षकों और एक-दो पालकों के साथ हर साल 2-3 हफ्ते की सैर पर जाते हैं. बड़े बच्चे जब शहरों में जाते हैं तो यह उनके लिए बहुत मूल्यवान अनुभव होता है. शहरों में वे शैक्षणिक, सांस्कृतिक और अन्य संस्थाएं देखते हैं, अजनबियों के साथ बातचीत करते हैं, लोगों के घरों में रहते हैं और वहां शहरी घरों में इस्तेमाल किये जाने वाले यन्त्र उपयोग करना सीखते हैं. वे देखते हैं की देश के अन्य भागों जैसे हिमालय और राजस्थान में बच्चे कैसे रहते हैं. इससे उन्हें भिन्न सामाजिक और आर्थिक असलियतों का अनुभव होता है जहाँ ज़रुरत पड़ने पर उन्हें थोडा दबंग भी होना पड़ता है. सीखने के यह सूक्ष्म तरीके और अनुभव उन्हें बड़े होकर अपने पैरों पर खड़े होने में मदद देंगे. गाँव छोड़ कर जाने वाले बहुत के युवकों का अनुभव है कि बाहर के शहरों में लोग उनके साथ बेईमानी करते हैं. शायद इमली महुआ के बच्चों में इससे निबटने की कुशलता पैदा हो.

पिछले सात-आठ सालों में हमने बच्चों के आत्मविश्वास को बढ़ते देखा है. पहले यह बच्चे किसी बहरी व्यक्ति को देखते ही भाग जाते थे.

(SAATHI स्टाफ)

इस रिपोर्ट के लेखक जब इमली महुआ में थे तब उन्हें गोलावन जाने का मौका मिला. वहां पर किसानों का एक संगठन परंपरागत प्रजाति के बीजों के संरक्षण का प्रयास कर रहा था. उन्होंने सुझाया की स्कूल के बड़े बच्चे उस अनुभव से लाभान्वित होंगे. लेखकों के जाने के दो महीने बाद बड़े बच्चों का समूह साइकिल पर गोलावन गया और वहां उन्होंने संगठन के सदस्यों के साथ चर्चा की.

3) स्कूल के समुदाय के साथ सम्बन्ध

अगर बलेंगापारा में कोई मृत्यु हो तो उस दिन इमली महुआ स्कूल बंद रहता है. स्कूल के सदस्यों का मानना है की “उनका स्कूल तमाम खुशहाल गतिविधियों का अड्डा है” और जब गाँव में किसी का देहांत हो तो उस दिन स्कूल खुला रखना असंवेदना का प्रतीक होगा. गाँव में सभी लोगों का एक-दूसरे से गहरा जुड़ाव है, इसलिए ख़ुशी या गमी के मौके पर, सभी लोग हाज़िर होते हैं. स्कूल के सभी टीचर और बहुत से बच्चे यह जानते हैं कि गाँव में किसी के देहांत के बाद अगर स्कूल से ख़ुशी से चीखने, चिल्लाने की आवाजें आएँगी तो यह अच्छा नहीं होगा. अपने समाज के प्रति यह स्कूल की संवेदना का प्रतीक है.

शुक्रवार को इमली महुआ केवल आधे दिन चलता है जिससे कि बच्चे साप्ताहिक हाट में जा सकें. इस दिन लगभग सभी परिवार बाज़ार जाते हैं जहाँ वे हफ्ते भर की चीज़ें खरीदते हैं, या फिर कच्चा माल या खाने की चीज़ें, मिट्टी के बर्तन, औज़ार, झाड़ू, बांस की टोकरियाँ, मुर्गियां, अंडे और कभी-कभी बड़े जानवर भी बेंचते हैं. सरकारी स्कूलों के बच्चे हाट वाले दिन अक्सर स्कूल नहीं जाते हैं. साप्ताहिक बाज़ार के महत्व और परिवार के साथ उसके सम्बन्ध को देखते हुए इमली महुआ स्कूल उस दिन केवल आधे दिन ही लगता है.

समुदाय के साथ सम्बन्ध जोड़ना

इमली महुआ स्कूल बलेंगापारा और आसपास के गांवों में छोटी-मोटी बीमारियों के लिए दवाइयां उपलब्ध करता है. जिन लोगों को पेशेवर डॉक्टर की ज़रुरत होती है उन्हें APCT की मदद से जगदलपुर ले जाया जाता है. उदाहरण के लिए जब स्कूल के छात्र शंकर की एक हादसे में टांग कटी तो उसकी मदद के लिए जयपुर-फुट लगवाया गया.

गाँव के हैंडपंप और स्नानघर की छत मरम्मत में भी इमली महुआ ने मदद की. हर छात्र और बलेंगापारा में हरेक परिवार को एक सोलर-लालटेन दी गयी. यह बात 2014 से पहले की है क्यूंकि उसके बाद गाँव में बिजली आ गयी.

जयपुर फुट के साथ शंकर

बच्चों ने गाँव में तम्बाखू के सेवन के खिलाफ अभियान चलाया. उन्होंने इस लत को छोड़ने के लिए लोगों में चूइंग-गम भी बांटी. इस मुहिम में उन्हें कुछ सफलता भी मिली.

सरकारी स्कूल के बच्चे बलेंगापारा स्तिथ इमली महुआ की लाइब्रेरी में

समुदाय के लिए अभी तक किया सबसे महत्वपूर्ण कार्य है लाइब्रेरी की सुविधा को सरकारी स्कूल के बच्चों को उपलब्ध कराना. जब पता लगा की सरकारी स्कूल के बच्चों के लिए सुबह के समय आना संभव नहीं होगा तो फिर लाइब्रेरी के समय को दोपहर का किया गया. साथ-साथ इमली महुआ स्कूल के बच्चों ने घर-घर जाकर सरकारी स्कूल के छात्रों को लाइब्रेरी में आने के लिए प्रोत्साहित किया.

स्कूल का यह प्रयास बहुत सफल हुआ. अब सरकारी स्कूल के बच्चे नियमित रूप से लाइब्रेरी में आते हैं. स्कूल द्वारा, बाहर के बच्चों के लिए अपने दरवाज़े खोलना एक बहुत महत्वपूर्ण बात हैं. यह प्रक्रिया लगातार चालू है. इससे कुछ बच्चे पुस्तक प्रेमी बनें और किताबें पढने से शायद उनकी सोच का दायरा बढे.

प्रयाग को लगता है कि स्कूल को समुदाय तक पहुँचने में अभी और काफी काम करना करना बाकी है. उनके अनुसार समस्यायों के लिए लम्बी अवधि के हल खोजने चाहिए - जैसे कूड़े-कचरे का मुद्दा, चाहें वो बलेंगापारा में, या फिर हाट में. उन्हें लगता है की इमली महुआ को गाँव के सरकारी स्कूल के साथ अपना सम्बन्ध और बढ़ाना चाहिए. इमली महुआ जब बच्चों को सैर-सपाटे या फिर साइकिल सैर पर ले जाता है तो उसमें सरकारी स्कूल के बच्चों को भी शामिल कर सकता है.

4) गरीब तबके के लोगों के बारे में सोचना

सैर-सपाटे के दौरान बड़े बच्चों के साथ पर्यावरण और सामाजिक मुद्दों पर हमेशा सवाल उठाये जाते हैं. इन शैक्षणिक दौरों में बच्चे भोपाल गए हैं जहाँ वे भोपाल गैस त्रासदी के शिकार लोगों से मिले, बेयरफुट कॉलेज, तिलोनिया और राजस्थान में मजदूर किसान शक्ति संगठन के कार्यकर्तायों से मिले. दिल्ली में वे वेश्यायों के बच्चों, घर से भागे हुए बच्चों और बेघर लोगों से भी मिले.

5) बच्चों में आत्मविश्वास पैदा

> *सरकारी संस्थाओं में गैर-आदिवासी शिक्षक, आदिवासी बच्चों को अक्सर मुड़िया या बस्तरिया यानी "बेवकूफ इंसान" के नाम से बुलाते हैं.*
>
> (SAATHI स्टाफ)

भारत में आदिवासी बच्चों को, स्कूल में दाखिले के बाद से ही अक्सर अपमानजनक अनुभव झेलने पड़ते हैं. अक्सर हेडमास्टर या क्लास टीचर बच्चों के नाम बदल देते हैं. बाहर से आये गैर-आदिवासी शिक्षकों को, आदिवासी बच्चों के नाम बहुत अजीबोगरीब लगते हैं. आदिवासी बच्चों के नामों और विविधता का आदर करने की बजाये यह गैर-आदिवासी शिक्षक बच्चों का नाम बदल कर उन्हें अपमानित करते हैं. औपनिवेशिक काल में भी ऐसा ही हुआ. तब बहुत सारी इसाई नन्स ने भारतीय बच्चों को उनके मूल नाम से न बुलाकर उन्हें अंग्रेजी नाम दे डाले.

पहचान छीन लिए जाने के बाद भी आदिवासी बच्चे, अपनी भाषा और पिछड़ेपन को लेकर लगातार ताने सुनते रहे. स्कूल से उन्हें बार-बार एक ही सन्देश मिलता है कि वे स्वाभाविक रूप से बेवकूफ हैं. इससे बच्चों में और हीनता और झिझक आती है. (रामदास, बी. 2013).

भारतीय संविधान की धारा 350 (A) के अनुसार, "हर राज्य और स्थानीय निकाय का यह प्रयास होगा कि भाषा-सम्बन्धी अल्पसंख्यक समाज के बच्चों का प्राथमिक शाला में शिक्षण, उनकी मातृभाषा में ही दिया जाए. और ऐसी

सुविधाएँ जुटाने के लिए भारत के राष्ट्रपति किसी भी राज्य सरकार को ज़रूरी दिशा निर्देश दे सकते हैं."

नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क (2005) के अनुसार "स्कूल की पहली चिंता बच्चे की भाषा का विकास की हो और वो उसमें योग्य बनें. अभिव्यक्ति और साक्षरता के मुद्दे, सर्जन, सोचने और दूसरों से संवाद के लिए बच्चे, भाषा का समुचित प्रयोग करना सीखें. इस बात पर विशेष बल दिया जाए कि बच्चों को उनकी मातृभाषा में, खासकर आदिवासी भाषायों में सीखने का मौका मिले, चाहें इन बच्चों की संख्या बहुत कम क्यों न हो."

NCERT को यह दस्तावेज़ तैयार किये एक दशक से ज्यादा बीत चुका है, परन्तु दुर्भाग्यवश उससे ज़मीनी हकीकत में कोई बदलाव नहीं आया है. बच्चे, खासकर छोटी उम्र के बच्चे सबसे अच्छी तरह अपनी मातृभाषा में ही सीखते हैं. इस तथ्य को हमारी शैक्षिक संस्थायों ने बिलकुल नज़रंदाज़ किया है. बहु-भाषीय शिक्षण की कोई प्रभावशाली नीति नहीं बनी है. भाषा शिक्षण का ऐसा कोई मॉडल नहीं है जिससे बच्चा अपनी आदिवासी भाषा और राज्य की प्रमुख भाषा के बीच की गहरी खाई को लांघ सके.

समस्या इसलिए और गहरा गयी है क्यूंकि आश्रम शालायों में जो शिक्षक चुने जाते हैं वे आदिवासी भाषाएँ नहीं जानते हैं. अक्सर शिक्षकों का चयन बाहर के क्षेत्रों से किया जाता है. इसलिए वो कक्षा में बच्चों की आदिवासी भाषा नहीं बोल पाते हैं. इसलिए बच्चा जब कक्षा में पहली बार कदम रखता है तो वो टीचर की बात को बिलकुल समझ नहीं पाता और वो सहमकर घबरा जाता है. भारतीय भाषायों के फोकस ग्रुप ने सिफारिश की थी, "ऐसे शिक्षकों का चयन ज़रूरी है जो आदिवासी भाषा भी जानते हों." (NCERT 2006)

छत्तीसगढ़ राज्य की 30-प्रतिशत से ज्यादा आबादी आदिवासी है. राज्य सरकार ने आदिवासी बोलियों में कुछ पुस्तकें विकसत करने का प्रयोग किया है. पर इन पुस्तकों की बहुत सीमायें हैं क्यूंकि उनमें सन्दर्भ और चित्रण, शहरी और गैर-आदिवासी हैं. (वीर्भाद्रनायिका पी. आदि 2012).

इमली महुआ में भाषा शिक्षण

इमली महुआ में आने वाले बच्चों के परिवार गोंडी या हल्बी, या फिर दोनों बोलियाँ बोलते हैं. हल्बी भाषा, हल्बा अनुसूचित जाति के लोगों की है. उन्हें गलती से अक्सर नीची जाति का हिन्दू समझा जाता है. हल्बी एक इंडो-आर्य भाषा है और वो गोंडों द्वारा बोली जाने वाली गोंडी (द्रविड़) भाषा से बहुत अलग है. इस क्षेत्र में चार भाषाएँ बोली जातीं हैं. उन भाषायों में एक तरह का वर्णक्रम है - जिसमे सबसे ऊपर हिंदी और उसके बाद छत्तीसगढ़ी, हल्बी और गोंडी भाषाएँ हैं.

कोकोडी गाँव के बच्चे गोंडी नहीं बोलते हैं. अन्य गाँव के बच्चे अपने घरों या फिर एक-दूसरे के साथ शायद गोंडी में बोलते हों. पर सभी बच्चे में हल्बी में बोलते हैं. हल्बी भाषा आसानी से सीखी जा सकती है. इसलिए जो इक्का-दुक्का बच्चे हल्बी नहीं जानते वे भी इमली महुआ में उसे जल्दी ही सीख लेते हैं. गोंडी और हल्बी दोनों ही बोलियों की; अपनी कोई लिपि नहीं है.

शुरू के दो सालों में पालकों की अपेक्षायों के दबाव में, स्कूल ने केवल अंग्रेजी में ही बोलने का नियम बनाया. पर जल्द ही नियम बनाने वालों को अपनी गलती समझ में आयी. उन्होंने देखा कि उनके इस निर्णय से बच्चे नाखुश थे. उसके बाद से हिंदी और अंग्रेजी उपयोग होने लगा. बड़ों को, भाषा को लेकर फिर भी कुछ कमी नज़र आयी. उसके बाद से स्कूल में बच्चों को किसी भी भाषा के उपयोग की खुली छूट दी गयी.

स्थानीय भाषा के इस्तेमाल को प्रोत्साहन देने के लिए बच्चों ने स्थानीय भाषा में सभाएं कीं, गाने गाये और कहानियां सुनाईं. प्रयाग ने बच्चों की मदद से दोनों भाषाएँ सीखीं. क्यूंकि सपरी ग्रुप के बच्चों को छात्र-शिक्षक पढ़ते हैं इसलिए छोटे बच्चों को कोई समस्या नहीं आती है.

सेमर और सूरजमुखी समूहों के बच्चे अपनी छह-माही मूल्यांकन रिपोर्ट खुद लिखते हैं. इस रिपोर्ट को बच्चे एक पत्र के रूप में अपने पालकों को लिखते हैं. उन्होंने पिछले कुछ महीनों में क्या किया, रपट में इसका ब्यौरा होता है. इस रपट को बच्चे हल्बी में लिखते हैं और फिर उसके कवर पन्ने को कलात्मक तरीके से सजाते हैं. इस रपट के केवल फोटोकॉपी ही स्कूल में रहती है जबकि मूल रपट घर में, स्कूल द्वारा दिये एक प्लास्टिक कवर में रखी जाती है. टीचर, छोटे बच्चों की रपटें लिखते हैं. सभी रपटें हल्बी में लिखी जाती हैं जिससे की पालक उन्हें समझ सकें.

इस रिपोर्ट को लिखते समय हमें पता चला कि शिक्षा अधिकारी के रिकार्ड्स में, इमली महुआ खुद को एक हल्बी माध्यम के स्कूल के रूप में दर्ज करना चाहता है.

सीखना, नीचा दिखाने वाला अनुभव न बने

बच्चों में अलग-अलग सीखने की क्षमताएं हैं इसे इमली महुआ के पालक मानते हैं. अगर कोई बच्चा पढाई में बहुत कुशल हो तो उसकी बहुत तारीफ नहीं की जाती है. यह सभी बच्चे पहली पीढ़ी के छात्र हैं और अगर किसी बच्चे की पढाई में रूचि न हो तो इस बात को भी सहर्ष स्वीकारा जाता है. अच्छे नंबर लाने का बच्चों पर कोई दबाव नहीं होता है, कोई परीक्षा नहीं होती, फेल होना भी ठीक माना जाता है, और बच्चों पर पास-फेल का कोई लेबल नहीं चिपकाया जाता है. यह आदिवासियों की जीवनशैली के अनुरूप है - जहाँ स्पर्धा की बजाये सहयोग पर अधिक बल दिया जाता है.

कई मायनों में इमली महुआ ने स्कूल शब्द के मूल अर्थ को जिंदा रखा है. "स्कूल" का अर्थ होता है मौज-मस्ती. पर सदियों की कठोरता, अनुशासन और उपदेशात्मक सीख ने उसे पूरी तरह दबा दिया है. आजकल स्कूलों में केवल पढाई के पक्ष पर ही जोर होता है, और बच्चों की खुशहाली, सेहत, सुरक्षा और दबाव मुक्त बचपने की किसी को फ़िक्र नहीं होती है.

6) पर्यावरण के प्रति चेतना

इमली महुआ स्कूल प्रगति और विकास की धारा से कटा है और वो पर्यावरण को बहुत कम प्रदूषित करता है. स्कूल में पानी का बहुत कम उपयोग होता है क्यूंकि पानी को गाँव के हैंडपंप से बाल्टियों में भरकर स्कूल ले जाया जाता है. बिजली की लाइन स्कूल में फरवरी 2015 में ही आयी. जब बिजली होती भी है तब भी उसका न्यूनतम इस्तेमाल होता है. सभी बच्चे पैदल चलकर या फिर साइकिल से स्कूल आते हैं.

इस सबके बावजूद स्कूल का प्रयास है कि वो पर्यावरण पर अपना कम-से-कम असर डाले. ज़्यादातर बर्तनों को मिट्टी से साफ़ किया जाता है. केवल तेल से चिपके बर्तनों, या बड़े कुकर की सफाई के लिए ही साबुन का प्रयोग किया जाता है. धुलाई के बाद उस पानी को भी पौधे उगाने के काम लाया जाता है. स्कूल इस्तेमाल होने वाले सामान को थोक में खरीदता है जिससे की पैकिंग का कचरा कम हो. जो कुछ कचरा पैदा होता है उसे हर हफ्ते कोंडागांव भेजा जाता है क्यूंकि गाँव में कूड़ा-कचरे के प्रबंधन की कोई सुविधा नहीं है.

हमने स्कूल को एक सुझाव दिया - बाज़ार से खरीदे सेनेटरी नैपकिन्स की बजाए वो कपड़े से बने, बार-बार उपयोग किये जाने वाले नैपकिन्स खुद बनायें. स्कूल ने इस सुझाव को तुरंत माना. मासिक धर्म के समय स्कूल में लड़कियों की हाजिरी कम हो जाती थी, इसलिए स्कूल ने सेनेटरी नैपकिन्स उपलब्ध कराये जिससे लड़कियां उनका स्वेच्छा से उपयोग कर सकें. अब सेनेटरी नैपकिन्स की बजाए कपड़ा उपयोग किया जाता है जिससे कचरा पैदा नहीं होता है.

हमने टीचर्स से वन अधिकार अधिनियम (8) के बारे में भी चर्चा की और सुझाव दिया कि वे बड़े बच्चों को इस कानून के कुछ प्रस्तावों से अवगत कराएँ. स्कूल ने इस सुझाव को भी माना और तय किया कि समय आने पर इस क्षेत्र में काम करने वाले कार्यकर्तायों और बच्चों के बीच चर्चासत्र आयोजित किया जाएगा.

8. Scheduled Tribes and Other Traditional Forest Dwellers (Recognition of Forest Rights) Act, popularly referred to as the Forest Rights Act

निष्कर्ष

इमली महुआ ने अपने संचालन में आदिवासी आचार-विचार को बरकरार रखने की कोशिश की है. स्कूल में क्या चल रहा है? यह प्रश्न बार-बार पूछा जाता. जो बातें बच्चों को स्कूल में नाखुश करती हैं उन्हें गंभीरता से लिया जाता है. बड़ों के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात है कि बच्चे स्कूल में खुश रहें और खुद को सुरक्षित महसूस करें.

स्कूल और भी कुछ कर सकता है, और कुछ अन्य चीज़ों को अलग ढंग से भी कर सकता है. वैसे स्कूल ने हमारे कई सुझाव ख़ुशी-ख़ुशी माने - सेनेटरी नैपकिन्स, बीज-बचाओ के प्रयास में भागीदारी, वन अधिकार एक्ट पर बच्चों के बीच चर्चा आदि, पर सुधार के कई अन्य पहलुयों को स्कूल मानने को तैयार नहीं हुआ.

आदिवासी समाज, परंपरागत ज्ञान का एक भण्डार है. इस विवेक को संकलित कर, जिंदा रखकर उसे स्कूल के पाठ्यक्रम में शामिल करने का प्रयास स्कूल द्वारा नहीं किया गया. बलेंगापारा में घोटुल जो छह साल से बंद था वो दुबारा शुरू हो रहा था. मध्य भारत के अधिकांश गांवों में यह प्राचीन संस्था बंद हो चुकी है. घोटुल में आदिवासी युवक बहुत सी कुशलताएँ सीखते थे जो व्यस्कता में उनके काम आती थीं. स्कूल जाने वाले बच्चों को घोटुल की सदस्यता नहीं मिलती है और क्या पता बलेंगापारा में परंपरागत घोटुल कितने दिन और चलेगा. घोटुल के आभाव में यह और भी महत्वपूर्ण है कि इमली महुआ, जैसे शिक्षा के साधन, बच्चों की इस ज़रुरत को किसी हद तक पूरा करें.

स्कूल में केवल मर्द टीचर हैं. यह जानबूझ कर नहीं किया गया है. पर हमारा मानना है कि स्कूल में बच्चों के लिए महिला और पुरुष दोनों शिक्षकों का होना बेहतर होगा. दूरदराज़ इलाकों की अपनी सीमायें होती हैं और आदिवासी क्षेत्रों में महिला शिक्षकों को मिलना बहुत मुश्किल काम होगा. इस समय स्कूल में महिला-पुरुष शिक्षकों का अनुपात असंतुलित है. पर अगर स्कूल की कोई वर्तमान छात्रा, भविष्य में शिक्षिका के रूप में स्कूल में वापिस आये तो इस असंतुलन को ठीक किया जा सकता है.

अंत में हमें लगा कि इमली महुआ स्कूल, गाँव की वर्तमान शैली और भविष्य में बच्चों के काम आने वाली कुशलतायों के बीच एक संतुलन कायम करने का प्रयास कर रहा है. हरेक संस्था, व्यक्ति या सरकारी विभाग जो आदिवासी बच्चों के हितों के लिए कार्यरत है वो इमली महुआ स्कूल के अनुभवों से ज़रूर लाभान्वित होगा.

इमली महुआ स्कूल के सिद्धांत और तरीके (विविधता का आदर, प्रजातान्त्रिक प्रणाली, आज़ादी और ज़िम्मेदारी, पर्यावरण और सामाजिक संवेदना, सामुदायिक सीख) एक समतामय और न्यायसंगत समाज की आधारशिला हैं.

इमली महुआ एक साहसी प्रयोग है. वर्तमान में आदिवासी समाज को वह एक बेहतर सेवा प्रदान कर रहा है. केवल 63 लोगों का यह छोटा समूह हमें अलग तरह से चीज़ें करने के विकल्प सुझा रहा है. यह जोखिम उठाने लायक है. इस यात्रा का खुद अपना एक औचित्य है, और वो चाहें जिस मुकाम पर पहुंचे वह हमारे अनुभवों को और परिपक्व करेगा.

सन्दर्भ

- नंदिनी एस. (2009-2010) सोशल एंड पोलिटिकल एक्सक्लूशन, रिलीजियस इन्क्लूजन : द आदिवासी क्वेश्चन इन एजुकेशन, बी. ऍम. पुग मेमोरियल लेक्चर.
- रामदास बी. (2013) आदिवासीस, एजुकेशन एंड द RTE, टीचर प्लस, मार्च 2013.
- वीरभद्रनायिका, पी. कुमारन, आर. एस. तुकदेव, एस. वासवी, ए. आर. 2012. "द एजुकेशन क्वेश्चन फ्रॉम द पर्सपेक्टिव ऑफ़ द अदिवासीस: कांदिशुन्स, पॉलिसीस एंड स्त्रक्टुरेस. नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडीज, यूनीसेफ, बैंगलोर.
- पोजीशन पेपर, नेशनल फोकस ग्रुप आन इंडियन लैंग्वेजेज, एनसीआरटी, नयी दिल्ली.